



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2020; 6(1): 111-112
www.allresearchjournal.com
 Received: 22-11-2019
 Accepted: 28-12-2019

नन्दनी कुमारी
 शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय
 हिन्दी-विभाग, ल. ना. मिथिला
 विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर,
 दरभंगा, बिहार, भारत

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'क्या घर क्या परदेश' की प्रासंगिकता

नन्दनी कुमारी

सारांश

अपनी कहानियों के समान ही दिवाकर के उपन्यासों के मूल में गाँव है। गाँव में बढ़ रहे शहर का प्रभाव और उस प्रभाव से हो रहे गाँव में परिवर्तन को रेखांकित करते उनके अधिकांश उपन्यास गाँव की सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों को उभारने का प्रयास करते हैं।

मुख्य शब्द:— वर्तमान, परिप्रेक्ष्य, प्रासंगिकता, शहर

प्रस्तावना

'क्या घर क्या परदेश' दिवाकर जी का प्रथम प्रकाशित उपन्यास है। इस उपन्यास में गाँव अपनी समूची आर्थिक एवं सामाजिक विसंगतियों के साथ उभरकर सामने आया है। इस उपन्यास में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार ईमानदार व्यक्ति को परिस्थितियों के वात्याचक्र में फँसकर हर स्तर पर लाचार होकर टूटना पड़ता है या फिर वह हर गलत-सही तत्वों से समझौता करने के लिए मजबूर दिखता है। इस प्रकार प्रकारान्तर से वह उसी तंत्र का अदना-सा फर्जा बनकर रह जाता है, जो शोषण-प्रक्रिया का जन्मदाता होता है और उसे गतिशील भी बनाये रखता है।

आज की बदली हुई परिस्थिति में गाँव की स्थिति ऐसी बनकर रह गयी है कि अपने ही खेत में अपने हाथों से खेती करने वाला व्यक्ति हेय दृष्टि से देखा जाता है। दूसरी ओर येन-केन प्रकारेण पैसा बटोरने वाले भ्रष्ट चरित्र समाज के लिए आदरणीय एवं आदर्श बन गये हैं। आज बस पैसा, मात्र पैसा ही सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार बन गया है। 'ईमानदारी से जीने की कोशिश एक अहमकथ्यन है और वही सफल है जो तिकडम करके पैसा बनाना जानता है। यह सच्चाई सिर्फ शहर के जीवन की नहीं, गाँव के जीवन में भी हर जगह उजागर हो गई है। 'क्या घर क्या परदेश' में रामधारी सिंह दिवाकर जी ने इसी सच्चाई को कौशल और उसके परिवार की कथा-व्यथा के माध्यम से कहने का प्रयास किया है।" ¹

आत्मकथा शैली में लिखे गये इस उपन्यास का कथानक ग्रामीण परिवेश और ग्रामीण मानसिकता के साथ जुड़ा हुआ है। उपन्यास का नायक परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाने के कारण परदेश की राह नापता है, लेकिन विडम्बना यह है कि उसे परदेश में भी इसी व्यवस्था के दबाव से जूझना पड़ता है। शोषण की प्रक्रिया वहाँ भी मौजूद है। ईमानदार और नैतिक चरित्र वाले व्यक्ति को समाज में किस प्रकार और क्यों घुट-घुट कर जीना पड़ता है— इस उपन्यास में ऐसे ही कुछ प्रश्नों को उभार कर उसके उत्तर तलाशने की कोशिश की गई है।

उपन्यास का नायक कौशल निम्न वित्त परिवार का एक पढ़ा-लिखा नौजवान है। पढ़ाई करने के उपरांत एक लम्बे अरसे तक वह नौकरी की तलाश में भटकता रहता है, पर उसे नौकरी नहीं मिलती। इस क्रम में धीरे-धीरे उसे इस बात का एहसास होते चलता है कि प्रांतीय घटकों में नौकरी के लिए जातिवाद, वंश-कुल से जुड़े संबंधों की आवश्यकता होती है या नौकरी पाने के लिए फिर कोई ऐसी राजनैतिक सुगमता अनिवार्य है। दुर्भाग्यवश इन दोनों से कौशल की दूर से भी कहीं से संबद्धता नहीं रहती। अतः उसे भटकना पड़ता है। अपनी बेकारी के दौर में वह ग्रामीण समाज की वास्तविकता से परिचित हो जाता है। बीमार बाप, बूढ़ी माँ, विधवा बहन और उसकी बेटी का एक मात्र सहारा कौशल, जो परिवार की घोर गरीबी के बाबजूद जैसे-तैसे बी. ए. तक पढ़ पाता है और फिर इन जातिवादी, वंशवादी एवं राजनीतिक कुचक्र में पिसकर वह नौकरी पाने में असमर्थ है, अन्ततः गाँव छोड़कर शहर (दिल्ली) जाने का फैसला कर लेता है। दिल्ली पहुँचकर वह नौकरी की तलाश में भटकता रहता है। यहाँ भी नौकरी उसे मरीचिका लगती है— "एक पत्रिका के पेट में अपने सर्टिफिकेट दबाये मैं एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर घूमा करता था। उधर अखबारों में केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा रोज घोषणाएँ पढ़ने को मिल रही थी— शिक्षित बेरोजगारों, गरीबों, भूमिहीनों,

Corresponding Author:

नन्दनी कुमारी
 शोध-प्रज्ञा, विश्वविद्यालय
 हिन्दी-विभाग, ल. ना. मिथिला
 विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर,
 दरभंगा, बिहार, भारत

गृह-विहीनों, आदिवासियों, दलितों वगैरह की बाबत ऐसी आकर्षक योजनाओं को मैं पढ़ता और स्वयं को देखकर मुस्कराने लगता।² हताशा के दौर में अपना खून बेचकर वह गुजारा करने को मजबूर होता है और उचाधार-सा व्यक्त करता है— “उन दिनों महानगर की उदारता का मैं शुक्र-गुजार हुआ था कि ऐसी-ऐसी जगहें भी यहाँ हैं।” अपने क्षेत्र के सांसद की सिफारिश से उसे एक नौकरी मिलती है— अखबार के दफ्तर में, वह भी कि उस नौकरी के लिए ‘साक्षर होना ही काफी था।’³

इस नौटंकी के दौरान वह मतिभ्रम में भटकता है जैसे उसके गाँव के चरित्रहीन संतसेवीजी और दूसरे लोग उसे कटघड़े में खड़ाकर उसका मखौल उड़ाने लगते हैं। पर धीरे-धीरे उसके आगे वह मायावी तिलिस्म खुलने लगता है। राजनीति, पंचनीति, कामनीति और षड्यंत्र। और वहाँ रहकर वह इन चीजों का सामना नहीं कर पाता और अन्ततः गाँव लौट आता है। उसके पाँव वहाँ जम नहीं पाते क्योंकि वह ईमानदारी से जीना चाहता है। गाँव में मरणासन्न पिता, आर्थिक संकट और तमाम आसन्न संकट है।

कौशल गाँव में देखता है कि उसके चाचा नूनु बाबू ठेके, कॉंपरेटिव आदि की तिकड़म करके सुख चैन की जिन्दगी जी रहे हैं। वहीं दलित युवा नेता रामलगन ‘दलित सांसद’ के नाम पर कई धंधे चला रहा है। मैट्रिक तक पढ़े लड़के किसी न किसी लूट के धंधे में लगकर मजा ले रहे हैं।

गाँव के चबूतरे पर बैठने वाला भिखारी रामदास सबके कारनामों का साक्षी होता है। वह जानता है कि सखीचन्द सरकारी स्टोर का सामान बेचकर ठाठ की जिन्दगी बिताता है। संतसेवी ने कृष्णा की माँ की डेढ़ बीघा जमीन हथिया रखी है और उसे पंचायत या कोर्ट कचहरी से न्याय नहीं मिलेगा। नूनु चाचा कौशल को बार-बार याद दिलाता है कि पढ़ने-लिखने से कुछ नहीं होता और पैसा कमाने की योग्यता ही सबसे बड़ी योग्यता है। पैसा कमाने का सुअवसर कौशल को भी मिलता है, किन्तु उसके साथ शर्त लगी होती है कि वह दलित सांसद की रखैल की बेटी से शादी करले।

प्रस्तुत उपन्यास में यह सत्य उजागर हुआ है कि कहने के लिए गाँवों की दुनिया जीवित है। “वहाँ वर्ण-व्यवस्था है, ऊँच-नीच है, कर्म-सिद्धांत के अनुसार पूर्वकृत कर्मों को ढोने वाली चारित्रिक हस्तियाँ हैं। परन्तु इस फरानी दुनिया में नयी दुनिया की राजनैतिक पद्धति की पोले इस ढंग से प्रवेश करती हैं कि वे शोषकों की प्रचण्ड नयी जामात बनकर कार्यरत हो जाती हैं। यह मात्र संयोग नहीं कि ऐसी नयी जामात का रिश्ता दूर सुदूर, अनाम गाँव से चलकर केन्द्र अर्थात् महानगर, राजधानी तक स्थापित हो जाता है।”⁴ इस क्रम में पाठक के पल्ले यह सत्य आ पड़ता है कि अपनी दुर्दशाओं के लिए गरीब, शोषित जन जिस ढंग से मानवेतर सत्ता को कोसते फिरते हैं — वह ठीक नहीं है। वास्तविकता इससे कुछ भिन्न है। महानगरों की मशीनी जिन्दगी से ऊबकर एक रोमानी भाव से गाँव की ओर देखने वाले लोगों को यह उपन्यास निराश ही नहीं, आगाह भी करता है। उपन्यास में कौशल जब कई सालों बाद गाँव लौटता है तब उसे गोहाल की स्थिति देखकर ही घर की स्थिति का बोध हो जाता है। परिवार की स्थिति का यह प्रतीक अपने आप में प्रतिबिम्बित कथा की तरह है। सारे उपन्यास में एक भयानक चीख व्याप्त है, दम तोड़ते हुए मूल्यों की। गाँव में आज मणिविहीन नागडीह बन गये हैं। उपन्यास के अंत में लेखक उस मणि को खोजने के लिए उध्यत दिखाई देता है— “जिसके चमत्कार से गाँव के चौपाल के टूटे चबूतरे की दीवार से एक पीपल का पेड़ फूटकर निकल सकता है।”⁵

‘क्या घर क्या परदेश’ कथ्य की व्यंजना का उपन्यास है। इसकी व्यंजना की विविध विधाएँ हमारे मन की परतों पर कहीं गहरे जगह बना लेती हैं। यहाँ गाँव और शहर दो प्रतीक हैं, जिनके इर्द-गिर्द कथा चरित्रों के कार्य-कलाप विकसित होते हैं— परन्तु यह विकसित रूप एक ऐसी त्रासदी की अनुभावना देता है जो

अन्यत्र विरल है। ग्राम और शहर दोनों में आदमी एक ही ढंग से पिसता है। गाँव में असुरक्षा का भाव ग्रामीण समाज के मूल्य विधानों पर अपनी आर्थिक तथा जातीय हैसियत रखने वाले आधिपत्य रखते हैं :— शहरों में अलगाव अर्थात् निस्पृहता के रहते हुए भी कुछ शक्तियाँ हैं जो ‘मनुष्य’ के लिए असुरक्षा, आतंक और तनाव बनाये रखती हैं। विवेच्य उपन्यास का मूल व्यंजना-कौशल इसकी तुलना नहीं करता वरन् वह कौशल जैसे चरित्र के माध्यम से स्पष्ट करता है कि मूल्य, सदाचार, सत्य आदि चीजें अब विपन्नता के तमगे भर बन कर रह गये हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत उपन्यास का प्रतिपाद्य असलियत के खौफनाक चेहरे की निर्मिति के लिए उत्तरदायी भौतिक शक्तियों को जानना, वे भौतिक शक्तियाँ जो न जाने किन-किन दुरभि संधियों के आचरणगत मूल्यों की अपने अनुरूप व्याख्या देती है— उससे परिचित होना रहा है। यह एक तरह से यथार्थ के बाहरी परिवेश की स्थिति के भीतरी रूप को जानता है। यह यथार्थ अर्थात् एक ग्राम समाज में कुल संस्कारों के अवशेष ढोता हुआ विपन्न परिवार और उसका सुशिक्षित एक मात्र सहारा नवयुवक कौशल ही नहीं, बल्कि युवक के सपनों पर आधिपत्य रखने वाले कुचक्रों का अन्तर्यथार्थ है— जो सामान्य रूप से औसत भारतीय की जिन्दगी को ‘कीलित’ किये हुए है। अतः भौगोलिक रूप से बिहार में पिछड़े गाँव, शहर, महानगर, दिल्ली जैसी स्थानिक संज्ञाएँ ही इस उपन्यास की सीमा नहीं, अपितु यह एक प्रकार से उस सार्वजनिक स्थिति को अपने में समेटता है जो सर्वत्र विद्यमान है और हम खुली आँखों से उसे देखते हैं।

संदर्भ

1. भारतीय गाँव का यथार्थ— मस्तराम कपूर, ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र, ले. जीतेन्द्र वर्मा, पृ.— 124
2. क्या घर क्या परदेश (उपन्यास), दिवाकर (प्र. से.) पृ.— 68
3. वही, पृ.— 72
4. गाँव से महानगर की खामोश यात्रा— गंगा प्रसाद विमल— गगनांचल, दिल्ली, अंक— 2 —1984
5. क्या घर क्या परदेश (उपन्यास)— दिवाकर— प्र. सं.— पृ.— 201